**International Journal of Research in Social Sciences**
Vol. 13 Issue 02, February 2023,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

# मध्यकालीन भारत में कबीर और ललद्यद् का समाज सुधार आंदोलन में योगदान

Dr. Manju Devi
Asstt Prof of History
C.M.K National P.G. College, Sirsa

मध्यकालीन भारत में भक्ति आंदोलन के परिणामस्वरूप बहुत सारे भक्त संतो एवं साधिकाओं का उदय हुआ। इस आंदोलन में मुख्यतः समाज में फैली सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों (मूर्तिपूजा, यज्ञ, बलि, बाल–विवाह, सती–प्रथा, विधवा पुनर्विवाह) का विरोध करके हिन्दू संस्कृति को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया गया। भक्त संतो ने बिना किसी जाति, जन्म, धर्म व लिंग के भेदभाव के सभी के लिए भक्ति के द्वार खोल दिए। इस आंदोलन के परिणामस्वरूप स्त्रियों को भी भक्ति में आने का अवसर प्राप्त हुआ। वैसे तो प्राचीनकाल से स्त्रियों की स्थिति पुरूष की तुलना में काफी कमजोर रही है और मध्यकाल तक आते–आते इसमें और भी ज्यादा गिरावट आ चुकी थी। अगर भक्ति आंदोलन के संदर्भ में चर्चा करें तो इसमें भी संतों के रूप में पुरूषों का ही वर्चस्व रहा क्योंकि प्राचीन काल से ही स्त्री को समाज में दोयम दर्जा दिया गया। इसलिए जब हम भक्ति आंदोलन के संतों का जिक्र करते हैं तो ज्यादातर कबीर, दादू, नानक, रैदास, तुलसीदास इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है। साधिकाओं की उपस्थिति बहुत कम देखने को मिलती है। यदि कुछ साधिकाओं का उल्लेख मिलता भी है तो उस समय समाज में उन्हें वो मान–सम्मान प्राप्त नहीं हुआ जो संतों को प्राप्त था और इनकी रचनाओं पर भी शोध कार्य बहुत कम हुआ है। मध्यकालीन भारतीय इतिहास में कबीर एक ऐसी शखसियत हुए हैं जो किसी परिचय के मोहताज नहीं है। कबीर भारतीय इतिहास के पहले ऐसे संत हुए हैं जिन्होंने सामाजिक एवं धार्मिक सुधार हेतु सामाजिक रूढ़ियों एवं बाहरी आडम्बरों का खुलकर विरोध किया है। उन्होंने हिंदू एवं मुस्लिम दोनों ही धर्मों की रूढ़ियों का विरोध करके दोनों धर्मों में सामाजिक एवं धार्मिक चेतना लाने का प्रयास किया।

कबीर के सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आंदोलन से तो बहुत से लोग परिचित हैं और उनकी प्र"ंसा भी करते हैं लेकिन बहुत कम लोग यह जानते हैं कि कबीर से पहले

क"मीर की भक्त साधिका ललद्यद् (1335 ई०) यह काम कर चुकी थी। ललद्यद् ने जाति एवं धार्मिक भेदभाव को व्यर्थ बताते हुए आपसी भाईचारे का संदे"ा दिया। उन्होंने जनता को धर्म के वास्तविक स्वरूप से अवगत करवाकर तत्कालीन धार्मिक आडम्बरों एवं रूढ़ियों का विरोध किया। परन्तु लिंग भेद (स्त्री होने के कारण) के कारण ललद्यद् को भारतीय इतिहास में वो प्रसिद्धि प्राप्त नहीं हुई जो कबीर को प्राप्त हुई है। जो काम कबीर ने 15वीं सदी में किया वही काम क"मीर में ललद्यद् 14वीं सदी में कर चुकी थी।[1] इसलिए उन्हें इतिहास में कबीर की पूर्णगामी कहा जाए तो अति"योक्ति नहीं होगी। **प्रस्तुत भाोध पत्र में कबीर और ललद्यद् के समाज–सुधार आंदालन में योगदान को संयुक्त रूप से द"र्ाने का प्रयास किया गया है।**

ऐतिहासिक कालक्रम से देखें तो ललद्यद् का जन्म 1335 ई० में क"मीर में वहाँ के तत्कालीन सुल्तान अलाउद्दीन (1334–1354 ई०) के शासनकाल में पांपोर के निकट सिमपुरा गाँव में एक ब्राह्मण घराने में सोन पंडित के यहाँ हुआ था। ललद्यद् को प्रारम्भिक ि"ाक्षा अपन कुल शुरू सिद्धमोल से प्राप्त हुई।[3] सिद्धमोल ने उन्हें धर्म, द"र्न, ज्ञान और योग संबंधी ि"ाक्षा दी। ललद्यद् की वैवाहिक जीवन में रूचि नहीं थी। अपनी पत्नी में बढ़ती हई विरक्ति को देखकर उनके पति सिद्धमोल को चिन्ता हुई और उन्होंने कुलगुरू सिद्धमोल जी से प्रार्थना की कि वे ललद्यद् को ऐसी ि"ाक्षा दें जिससे वह सांसारिक जीवन में रूचि लेने लगे। इससे पहले की कुलगुरू ललद्यद् को सांसारिकता का पाठ पढ़ाते एक गम्भीर चर्चा शुरू हो गयी। चर्चा का विषय था– सभी प्रका"ाों में कौन–सा प्रका"ा श्रेष्ठ है? सभी तीर्थों में कौन–सा तीर्थ श्रेष्ठ है? सभी परिजनों में कौन–सा परिजन श्रेष्ठ है? और सभी सुखद वस्तुओं में कौन–सी वस्तु श्रेष्ठ है? इस विषय पर ललद्यद् ने कहा– आत्मज्ञान के समान कोई प्रका"ा नहीं है, जिज्ञासा के समान के कोई तीर्थ नहीं है, ई"वर के समान कोई परिजन नहीं है तथा ई"वर भय के समान कोई सुखद वस्तु नहीं है।[4] ललद्यद् का सारगर्भित उत्तर सुनकर सोन पंडित और सिद्धमोल जी दोनों ही आ"चर्यचकित रह गए।

ससुराल में ललद्यद् को अपनी सास द्वारा दी गई यातनाओं को सहन करना पड़ा। वह उससे नौकरों की तरह काम लेती थी तथा पटभर भोजन भी नहीं देती थी। परिवार की

सतायी हुई ललद्यद् कहती है कि लल के भाग्य के पत्थर कहाँ टलेंगे (ललनीलवठ चलि न जांह)।[5] ललद्यद् ने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि उसकी सास जब उसे खाना देती थी तो पहले थाली में पत्थर रखकर उसके ऊपर भात का लेप कर देती थी ताकि वह खाना देखने में ज्यादा लगे। लेकिन विपरीत पारिवारिक परिस्थितियों ने ललद्यद् को एक नया रास्ता दिखाया। उसने भक्ति के क्षेत्र में आकर अपने वाखों के माध्यम से रूढ़िवादी भारतीय समाज में चेतना लाने का प्रयास किया।

ललद्यद् की तरह यदि कबीर जी का भी ऐतिहासिक कालक्रम देखें तो उनका जन्म 1398 ई० में का"ाी में हुआ था।[6] भारतीय इतिहास में यह तुगलकों का उत्तरोतर काल चल रहा था। तुगलक शासकों की अयोग्यता के कारण उस समय दे"ा में राजनीतिक अस्थिरता एवं अ"ाांति का माहौल चल रहा था। इस समय हिन्दू–मुस्लिम का भेदभाव बहुत ज्यादा था। तत्कालीन समाज में बाहरी आडम्बर, कर्मकाण्ड, बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, विधवा पुनर्विवाह न होना, धार्मिक कट्टरता जैसी बुराईयां व्याप्त थी। वर्णव्यवस्था और साम्प्रदायिकता ने समाज को खंडित कर दिया था। कबीर ने तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों का विरोध करके भारतीय समाज को एक नई दि"ाा देने का प्रयास किया। यद्यपि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन में कबीर को पहला समाज–सुधारक माना जाता है लेकिन उससे पहले क"मीर की प्रसिद्ध साधिका ललद्यद् (जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं) यह कार्य क"मीर में कर चुकी थी। प्रस्तुत शोध–पत्र में ललद्यद् और कबीर के द्वारा सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों पर प्रका"ा डालकर समाज में जो चेतनता लाने का कार्य किया गया उसको द"ार्ाने का प्रयास किया गया है।

ललद्यद् और कबीरकालीन भारतीय समाज पर नज़र डालें तो हिन्दू धर्म अपना नैतिक एवं आध्यात्मिक महत्व खो चुका था। यहाँ की जनता ने बाहरी दिखावे को अधिक महत्व देकर उसके मूलरूप को भुला दिया था। दोनों ने ही जनता के समक्ष उन्हीं की वाणी में धर्म के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत किया जिसमें न कोई बाहरी आडम्बर था, न ही कोई कठिनाई थी और न ही किसी प्रकार का कोई हस्तक्षेप ही था। उन्होंने धर्म के नाम

पर प्रचलित अथवा प्रचारित आडम्बरों, रूढ़ियों और परम्पराओं का खुलकर विरोध किया तथा सामाजिक अन्याय एवं विषमताओं पर भी कटाक्ष किए।

साधारणतः यह माना जाता है कि मध्यकाल में मूर्ति–पूजा का विरोध करने वाले सबसे पहले संत कबीरदास जी थे लेकिन बहुत कम लोग जानते हैं कि कबीर से पहले क"मीर में ललद्यद् मूर्ति–पूजा के खिलाफ अपनी आवाज़ उठा चुकी थी। मूर्ति–पूजा के बारे में वे कहती हैं कि यह मंदिर भी पत्थर का बना हुआ है और देवता भी। ऊपर–नीचे सब जगह पत्थर ही पत्थर है तो फिर मूर्ख मनुष्य! तू किसकी पूजा करेगा?

''यह देवता भी पत्थर ही है
और देवालय भी– ऊपर नीचे
सब कुछ पत्थर ही पत्थर है
मूर्ख पंडित! तू पूजा करेगा तो किसकी?''[7]

ललद्यद् के प"चात् 15वीं सदी में कबीर के द्वारा भी मूर्ति–पूजा का कड़ा विरोध किया गया। उनका मानना था कि जिस परमात्मा का कोई आकार नहीं है, उसकी मूर्ति कैसी। इसलिए मूर्तिपूजक हिन्दूओं को फटकार लगाते हुए वे कहते हैं कि यदि पत्थर की पूजा करने से भगवान मिलते तो मैं पहाड़ की पूजा करता। इस पत्थर की मूर्ति से तो पत्थर की चक्की ज्यादा अच्छी है जिसमें पिसा हुआ आटा सारा संसार खाता है।

''पत्थर पूजे हरि मिलै, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते वह चक्की भली, पीस खाय संसार।।''[8]

ललद्यद् ने मूर्ति–पूजा के साथ–साथ पूजा के लिए चढ़ाई जाने वाली सामग्री को भी व्यर्थ बताया है क्योंकि ई"वर तो संसार की प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है। हमारे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमें वह विद्यमान न हो। वह तो पृथ्वी, आका"ा, फल–फूल, जल, चंदन सभी में है। इसलिए ये पूजा की सभी सामग्री व्यर्थ है। इस पर ललद्यद् ने इस चढ़ावे और बाहरी दिखावे को व्यर्थ बताते हुए प्छा है कि फिर तुम उसकी पूजा के लिए क्या चढ़ाओगे?

''देव फिर पूजा कैसा आज?

तू ही गगन पवन भूतल तू
तू दिन तू रात!
तू ही अर्ध्य पुष्प जल चंदन
तू ही सब कुछ तात
व्यर्थ ये पूजा के सब साज
देव फिर पूजा कैसी आज?''[9]

ललद्यद् पूछती है कि हे मनुष्य! तुम उस ई"वर की उपासना के लिए कौन से फूल चढ़ाओगे? किस जल से उसका अभिषेक करोगे? और कौन से मंत्र का उच्चारण करके उसकी आराधना करोगे। वह कहती है कि हमें फूलों से नहीं बल्कि सच्चे विचारों से ई"वर की पूजा करनी चाहिए। अमृत जल से उसका अभिषेक करना चाहिए और मौन रूपी मंत्र जाप से ई"वर की आराधना करनी चाहिए। ललद्यद् ने यह संदे"ा दिया कि हमें ई"वर स्मरण के लिए बाहरी वस्तुओं को चढ़ाने की आव"यकता नहीं है, बल्कि अपने अंतर्मन को स्वच्छ करने की आव"यकता है उनके ये विचार तत्कालीन जनता को इन रूढ़ियों के प्रति सचेत करने की दि"ाा में एक अनूठा प्रयास है। उसी प्रकार कबीर ने धर्म के नाम पर किए जा रहे व्रत, उपवास, तीर्थ, पूजा, रोज़ा, नमाज, तिलक, गंगा स्नान इस प्रकार के दिखावे का जोरदार शब्दों में खण्डन किया। उनका मानना था कि गंगा स्नान करने से मनुष्य के मन का मैल दूर नहीं होता। जब तक मन शुद्ध व हृदय निर्मल नहीं होगा तक तक गंगा स्नान व तीर्थ यात्रा सब एक दिखावा मात्र हैं :–

''गंगानहाइन यमुना नहाइन नौ मन मल लिहिन–चढ़ाई।
पाँच पचीस के धक्का खाइन घरहूँ कै पूँजी दिहिन गवाँई।''[10]

''मुंड मुड़ाए हरि मिले सब कोई लेय मुड़ाय।
बार बार के मूंडते, भेड़ न बैकुण्ठ जाय।।''[11]

कबीर ने जप–तप, तीर्थ, व्रत, मुण्डन को व्यर्थ बताते हुए सच्चे मन से ई"वर की भक्ति का समर्थन किया और जनता को समझाया कि यदि मुण्डन करवाने से ई"वर की प्राप्ति होती तो सभी आसानी से मुण्डन करवाकर ई"वर से मिलन कर लेते। अगर मुण्डन से

ई"वर की प्राप्ति होती तो सबसे पहले भेड़ स्वर्ग में पहुँचती क्योंकि सबसे ज्यादा मुण्डन उसी का होता है।

तत्कालीन पंडित वर्ग पर कटाक्ष करते हुए ललद्यद् कहती है कि कोरे पुस्तकीय ज्ञान का भी कोई लाभ नहीं है। वो कहती है कि यहाँ पर तो ऐसे पंडित हैं जो केवल पोथियों को रटते रहते हैं और उन्हें धर्म का कोई वास्तविक ज्ञान नहीं होता। जिस प्रकार पिंजरे का तोता राम नाम को रटता रहता है ये भी उसी प्रकार से अपने धार्मिक ग्रन्थों जैसे गीता इत्यादि को दिखावे के लिए रटते रहते हैं :–

''पोथी पर पोथी रटते
रहते कोरे के कोरे!
ये पंडित, ये अविचारी, कुंछ ज्ञान न इनमें गड़ता
राम नाम का पाठ
कि ज्यों पिंजरे का तोता पढ़ता।
दिखलावे को पढ़ते गीता,
धिकरे!इनकी जड़ता!
पढ़ी–सुनी गीता मैंनं भी,
लेकिन ये मति भोरे,
पोथी पर पोथी रटते
रहते कोरे के कोरे।''[12]

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में एक स्त्री होने के कारण ललद्यद की यह चुनौतीपूर्ण वाणी और भी महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि ये वो समय था जब एक स्त्री का दायरा घर की चारदीवारी तक सीमित था। इन परिस्थितियों में ललद्यद ने एक स्त्री साधिका के रूप (जो स्वयं भी पंडित जाति से संबंधित थी) पंडित वर्ग के आडम्बरों पर जो कटाक्ष किए हैं, वो बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य था। उन्होंने तत्तकालीन सामाजिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों, पूर्वाग्रहों का खुल्लमखुल्ला विरोध करके अपने क्रान्तिकारी व्यक्तित्व का परिचय दिया है। ऐसा कहने पर लोग उन्हें क्यों कहेंगे उन्हें इस बात की भी चिंता नहीं थी और न ही वे किसी की परवाह करती थी।

''चाहे लोग हँसे या हजारों बोल कसें,
मेरे मनवासी को कभी खेद होगा नहीं।''[13]

ललद्यद की तरह ही कबीरदास ने भी कहा है कि धर्म ग्रंथ पढ़ने से कोई पंडित नहीं होता। ऐसे ग्रंथ पढ़ते हुए जाने कितने पंडित जा चुके हैं लेकिन किसी को ई"वर की प्राप्ति नहीं हुई। ई"वर मिलन के लिए ग्रंथों को पढ़ने की नहीं बल्कि सच्चे मन से उसकी भक्ति करने की आव"यकता है। जिसने ढ़ाई अक्षर प्रेम के पढ़ लिए वही वास्तविक पंडित हैं :–

''पोथि पढ़ि पढ़ि जग मुआ पंडित भया न कोय।
ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़ै सो पंडित होय।।''[14]

''पढ़–पढ़ के पत्थर भए, लिखि लिखि हो गए ईट।
कबीरा अंतर प्रेम की, लगी न एको छोंट।।''[15]

कबीरदास जी ने भी उस समय जनता को यही संदे"ा दिया कि खाली पोथियां पढ़ने का कोई फायदा नहीं जब तक हम अपने अन्तर्मन में प्रेम भाव नहीं रखते।

ललद्यद के ऊपर सामाजिक आलोचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह किसी के कहने से नहीं रूकी। जो भी उसे गलत लगा उसकी खुलकर विरोध किया। उसने धार्मिक रूढ़ियों में तीर्थ यात्रा का विरोध करते उसे व्यर्थ बताया। वो कहती है कि व्यक्ति ई"वर के द"ार्न के लिए तीर्थ यात्रा करता है जबकि उसको यह नहीं पता कि ई"वर तो उसके मन में ही है। वह अपने अन्तर्मन में ही उनके द"ार्न कर सकता है। इसके लिए उसे कहीं तीर्थ मे जाने की आव"यकता नहीं है। उनकी रचनाओं मे ंसूफियों का समर्पण व सादगी तथा शैवमत का समन्वय है। वे कहती है कि–मैं प्रभु को ढूढ़ने घर से निकली परन्तु रात दिन ढूँढ़ने के बाद भी वो नहीं मिले। अंत में देखा कि वो प्रभु तो मेरे हृदय में ही विराजमान हैं।

''प्रभु को ढूढ़ने घर से निकी
प्रेम से ढूढ़ते–ढूढ़ते रात–दिन गये बीत,
तब पंडित (प्रभु) को निज घर में ही पाया।
बस मुहुर्त साधना का निकल आया।।''[16]

ठीक इसी प्रकार के विचार हमें कबीर की रचनाओं में भी प्राप्त होते हैं। वो कहते हैं कि यदि हमें ई"वर से मिलना है तो उसके लिए किसी जप, तप, तीर्थ, व्रत किसी की भी

आव"यकता नहीं है। हम ई"वर के द"र्शन हेतू किसी मन्दिर, मस्जिद, काबा या कैला"ा में जाने की कोई आव"यकता नहीं है। यदि हम अपने अन्तर्मन में झाँकें तो वो हमारे अंदर ही विराजमान हैं :–

''ना मैं मंदिर, ना म मस्जिद, ना काबा कैलास में।
खोजो होय तो तुरतहि मिलिए, पल भरकी तैला"ा में।।''[17]

ललद्यद और कबीर दोनों ने ही अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन समाज में चमत्कारी शक्तियां दिखाने वालों (बहते हुए जल को थामना, अग्नि को बुझाना, भूमि से ऊपर उठकर आका"ा मार्ग को ओर वायु में चलना, काठ की धेनु से दूध निकालना) तथा ढोंग करने वालों पर कटाक्ष किए हैं। ललद्यद कहती है कि जब मैंने मिथ्या, कपट को त्याग दिया, प्रत्येक व्यक्ति में ई"वर को देखा तो फिर अन्न खाने से द्वेष क्यों करूँ। व्रत से अधिक महत्वपूर्ण है अपने मन को शुद्ध रखना :–

''मिथ्या, कपट, असत्य को त्याग
मन को दिया मैंने यही उपदे"ा
हर जीव में केवल का जाना
अन्न खाने से करूं क्यों द्वेष?''[18]

कबीर और ललद्यद दोनों ने ही तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित बलि प्रथा का विरोध करके लोगों को प्रेमपूर्वक रहने का संदे"ा दिया। ललद्यद बकरे की बलि का विरोध करते हुए पूछती है कि जो बकरा सर्दी से तुम्हारी रक्षा करता है, स्वयं घास–फूस खाता है, फिर तुम्हें यह उपदे"ा किसने दिया कि तुम निर्जीव पत्थर पर जीवित बकरे की बलि चढ़ा दो!

''तेरी लाज ढ़कता, शीत से भी रक्षा करता है
स्वंय (बेचारा) तृण–जल का करता है आहार,
फिर दिया किसने ये उपदे"ा तुझे, रे पंडित!
जो अचेतन पत्थर पर तू चेतन बकरे को बलि चढ़ाता है!''[19]

कबीर भी पूछते हैं कि जो बकरी पत्ते खाती है उसका तुम माँस खा जाते हो। उसके साथ हिंसा करते हो लेकिन जो इन्सान बकरी को ही खा जाता है उसका क्या किया जाए? :–

> ''बकरी पाती खात है ताकी काढ़ी खाल।
> जो नर बकरी खात हैं, ताको कौन हवाल।।''[20]

ललद्यद और कबीर ने सल्तनतकालीन समाज में केवल धार्मिक रूढ़ियों का ही विरोध नहीं किया बल्कि धार्मिक आधार पर हिन्दू–मुस्लिम में किए जाने वाले भेदभाव का भो विरोध किया और लोगों का साम्प्रदायिक सद्भावना का संदे"ा दिया। उन्होंने दोनों ही धर्मों के लोगों को आपसी भाई–चारे की भावना से रहने की अपील की।

> ''f"ाव व्याप्त है जल–थल में
> तू हिन्दू–मुसलमान में भेद न जान,
> प्रबुद्ध है तो पहचान अपने आप को
> यही साहिब से है तेरी पहचान।''[21]

इसी तरह का संदे"ा कबीर ने दिया है, वो कहते हैं कि लोग हिन्दू–मुस्लिम में भेदभाव करते हैं। हिन्दू राम को प्यार करते हैं तो मुस्लिम रहमान को। इस बात पर लड़–लड़कर दोनों मौत के मुँह में जा पहुँचते हैं तब भी दोनों में से सच को काई नहीं जान पाया। इसीलिए कबीरदास जी ने दोनों को ही आपसी प्रेमभाव से रहने का संदे"ा दिया।

> ''हिन्दू कहे मोहि राम पियारा, तुर्क कहे रहमाना।
> आपस में दोउ लड़ि–लड़ि मुए, मरम न कोउ जाना।।''[22]

ललद्यद के वाख सांस्कृतिक पुनर्जागरण, जनकल्याण तथा सामाजिक जीवन को दा"ार्निक अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। उसने जनता के सामने धर्म का रटा–रटाया स्वरूप प्रस्तुत नहीं किया। वह एक ऐसी योगिनी थी जिसने अपने जीवनकाल में ही ई"वर भक्ति का मार्ग खोज लिया था। वह जीवनमुक्त थी। उनके लिए जीवन अपनी निरर्थकता और मृत्यु अपनी भंयकरता खो चुके थे। उसने ई"वर को अपने में ही स्थित

पाया और जनता को भी यही संदे"ा दिया कि ई"वर को ढूंढ़ने के लिए कहीं बाहर जाने की आव"यकता नहीं है बल्कि वह तो मनुष्य के अन्तर्मन में ही विद्यमान है।

ललद्यद के वाख अपनी स्पष्टता, सागर्भिता और विचारों की गहनता के लिए प्रसिद्ध है। वे संसार की महानतम् विभूतियों में से एक है। उन्होंने जनता में आत्म"ाुद्धता, सदाचार और भाईचारे की भावना को जगाकर उन्हें वास्तविकता से अवगत करवाया। ऐसा कोई क"मीरी हिन्दू या मुसलमान नहीं है जिसके मुख पर उसके कुछ वाख सधे हुए ना हों। ललद्यद की कोई समाधि या स्मारक क"मीर में नहीं मिलता। संभवतः वह इन सब बातों से ऊपर थी। वह तो ई"वर की प्रतिनिधि बनकर अवतरित हुई थी और उसके आदे"ा को जन–जन में प्रचारित करके उसी में मिल गयी।

अब हम कबीर की बात करें तो जो रास्ता ललद्यद ने जनता को दिखाया था, कबीर ने भी समाज को वही रास्ता दिखाने का कार्य किया। इसलिए यदि ललद्यद को कबीर की अग्रगामी कहा जाए तो यह अति"योक्ति नहीं होगी। कबीर ने ललद्यद से भी बढ़कर समाज सुधारक के रूप में कार्य किया। उनके दाहे भी आज हिन्दू–मुसलमान दोनों में समान रूप से लोकप्रिय हैं। कबीर ने दोनों सम्प्रदायों में राम–रहीम के नाम पर चल रहे भेदभाव को भुलाकर उन्हें मिल–जुलकर रहने का संदे"ा दिया। कबीर ने समाज में एक नई प्रेम धारा का प्रचलन किया। उन्होंने समाज में प्रचलित अंधवि"वास, पाखंड, मूर्तिपूजा, बलि, हिंसा का विरोध करके लोगों को ज्ञान व कर्म के महत्व से अवगत कराया। उनकी रचनाएं आधुनिक युग में भी प्रासांगिक हैं। निःसन्देह मध्यकालीन भारतीय समाज में चेतनता लाने एवं उसमें सुधार के लिए ललद्यद और कबीर दोनों ही महान विभूतियों का योगदान चिरस्मरणीय है।

## पाद टिप्पणी–

1. ि"ाबन कृष्ण रैणा अनु०, *क"मीरी ललद्यद्,* भुवन बाणी ट्रस्ट, लखनऊ, 1977, पृ० 11
2. मोहिबुल हसन, *क"मीर अंडर द सुल्तान्स,* अली मोहम्मद एण्ड सन्स पब्लि०, श्रीनगर, 1974, पृ० 48
3. *क"मीरी ललद्यद्,* पृ० 12
4. *उपरोक्त,* पृ० 12–13
5. *उपरोक्त,* पृ० 13
6. सुधाकार पाण्डेय, *हिन्दी साहित्य चिंतन,* कैपिटल आफसेर प्रेस, दिल्ली 2002, पृ० 197
7. जार्ज ग्रियर्सन, ललवाक्यानि, *'द रॉयल ए"ियाटिक सोसायटी',* लंदन, 1920, पृ० 39
8. डॉ० श्यामसुंदर दास, *'कबीर ग्रन्थावली',* लोक भारती प्रका"ान, 2009, पृ० 130
9. *क"मीरी ललद्यद,* पृ० 32
10. *कबीर ग्रंथावली,* पृ० 127
11. *उपरोक्त,* पृ० 137
12. *क"मीरी ललद्यद्,* पृ० 19
13. *उपरोक्त,* पृ० 30
14. कैला"ा भट्ट, *'मध्यकालीन कवि और उनकी काव्य साधना'* सूर्य प्रका"ान, नई दिल्ली, 1985, पृ० 15
15. उपरोक्त।
16. शि"ा शेखर तोषखानी, *'क"मीरी साहित्य का इतिहास',* जे०एण्ड०के० एकेडमी, जम्मू, 1985, पृ०33
17. *कबीर ग्रंथावली,* पृ० 130
18. *क"मीरी ललद्यद्,* पृ० 101
19. *क"मीरी ललद्यद्,* पृ० 87
20. *कबीर ग्रंथावली,* पृ० 124
21. पी०एम० कौल बमजई, *'ए हिस्ट्री ऑफ क"मीर'*, मैट्रोपोलिटन बुक कंपली, दिल्ली, 1992, पृ० 494–495
22. *कबीर ग्रंथावली,* पृ० 132